विद्यावाचस्पतिः डॉ0 सुन्दरनारायणझाः
सहायक-आचार्यः, वेदविभागः,
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्,
बी-4, कुतुबसांस्थानिकक्षेत्रम्, नवदेहली-16

शुल्बसूत्र एवं वास्तुशास्त्र में आधाराधेय सम्बन्ध

यह सर्वविदित है कि वेद विश्व के समस्त ज्ञान-विज्ञान के स्त्रोत हैं | वेदशब्द के उच्चारण मात्र से ज्ञान-विज्ञान का ही बोध होता है, इसलिए शब्दविज्ञान के परम तपस्वी मर्मज्ञ अन्वेषक मुनि पाणिनि ने सर्वप्रथम **विद्-ज्ञाने** धातुसे वेदशब्द की निष्पत्ति प्रस्तुत की है | ज्ञान एवं विज्ञान इन दोनों शब्दों में अभेदान्वय सम्बन्ध होते हुए भी दोनों को अलग-अलग इसलिए कहना पडता है क्योंकि दोनों में स्वरूप का भेद है | जैसा कि अमर सिंह ने कहा है- **मोक्षे धीर्ज्ञानमन्यत्र विज्ञानं शिल्पशास्त्रयो: |**[1]

अर्थात् मोक्षप्राप्त्यर्थ ब्रह्मज्ञानादि में प्रवृत्त बुद्धि ज्ञान शब्द से बोधित है, तथा शिल्पादि शास्त्रों में प्रवृत्त बुद्धि विज्ञान का बोधक है | गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है- **ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषत:|**[2] अर्थात् हे अर्जुन ! मैं तुम्हें विज्ञान के साथ ज्ञान प्रदान करता हूँ| तात्पर्य यह है कि भूख का अनुभव होना ज्ञान है किन्तु भूख मिटाने के लिए रसोई तैयार करना विज्ञान कहलाता है | वेदों में इन दोनों की समष्टि है, अत: ज्ञान-विज्ञान समन्वित कहा जाता है | ज्ञान की शाखा संक्षिप्त हो सकती है किन्तु विज्ञान की शाखा उत्तरोत्तर विकसित होती रहती है | एक तत्त्व को मुख्य मान कर किया गया प्रयत्न ज्ञान तथा एक से अनेकत्व का बोध विज्ञान है | इस प्रकार यज्ञ को विज्ञान एवं योग को ज्ञान कहते हैं | एक से अनेक होना यज्ञ है तथा अनेक से एक में अंतर्लीन हो जाना ही योग है |

वेदों में विज्ञान सम्बन्धी रहस्यों के स्पष्टीकरण हेतु यथार्थ प्रतिपादक शास्त्रों का समन्वय किया गया है | इसलिय वेद के स्वयं चार विभाग- **मंत्र, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद्** हैं तथा छ: वेदाङ्ग कहे गए हैं | इसके अतिरिक्त पुराणेतिहास-नीति-दर्शन-कला-एवं विद्या आदि से सम्बन्धित समस्त शास्त्र उक्त वैदिक-साहित्य के अन्तर्गत आते हैं | उक्त समस्त शास्त्रों का आधार वेद ही है | इसलिए मनु ने कहा है - **वेदोऽखिलो धर्ममूलम्[3] |**

---

[1] अमरकोश, धीवर्ग, श्लोक- 6

[2] गीता- 7-2

[3] मनुस्मृति- 2-6

जिस प्रकार संसार के समस्त धर्म का मूल वेद ही है उसी प्रकार समस्त शिल्प का आधार शुल्बसूत्र है ऐसा कहना क्वचिदपि अतिशयोक्ति नहीं होगी | षड्वेदाङ्गों में **हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते**[4] इस सिद्धान्त के अनुसार विज्ञानात्मक कर्म सम्पादनार्थ हाथ की आवश्यकता सर्वप्रथम होती है | हाथ के बिना कर्म संपादन नहीं होगा, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता किन्तु विज्ञानजनित कर्म हाथ से ही होगा यह यथार्थ, सर्वमान्य एवं अनुभवसिद्ध है | **कल्पसूत्रों के चार विभाग हैं- श्रौतसूत्र**, **गृह्यसूत्र**, **धर्मसूत्र** एवं **शुल्बसूत्र |**

- **श्रौतसूत्र**- श्रौतसूत्रों में श्रौतयज्ञों की विधियाँ बताई गई हैं|
- **गृह्यसूत्र**- गृह्यसूत्रों में स्मार्त कर्मों की विधियाँ बताई गई हैं|
- **धर्मसूत्र**- धर्मसूत्रों में आचार-विचार एवं व्यवहार की विधियाँ बताई गई हैं|
- **शुल्बसूत्र**-शुल्बसूत्र में क्षेत्रविन्यास की विधियाँ बताई गई हैं |

शुल्बसूत्र का मुख्यावलम्बन स्थापत्यवेद है | स्थपति **(स्था+क),** तस्य पतिः स्थपतिः अर्थात् राजा, प्रभु, वास्तुकार, रथकार, अन्तःपुररक्षक, बृहस्पतियज्ञ करने वाला, सारथि, कुबेर, इत्यादि अनेक अर्थ होते हैं | यद्यपि **ष्ठा गतिनिवृत्तौ**[5] धातु से स्था धातु एक जगह स्थिर रहने के अर्थ में प्रयुक्त है | उसी आधार पर गृह को वास्तु अर्थात् वासस्थान, निवासस्थान कहते हैं | दुनियाँ भर का कार्य करने के उपरान्त जीव जहाँ विश्राम हेतु स्थिर होता है वह स्था का अर्थ है | वह घर मात्र हो सकता है | उस घर का स्वामी स्थपति कहलाता है | इस प्रकार स्थपति का अर्थ होता है- घर में रहने वाला गृहस्थ| उससे सम्बन्धित वेद स्थापत्यवेद कहलाता है | स्थापत्यवेद अथर्ववेद का उपवेद कहा गया है | चरणव्यूह के अथर्ववेद-खण्ड में **सर्वेषामेव वेदानामुपवेदा भवन्ति– ऋग्वेदस्यायुर्वेद उपवेदो, यजुर्वेदस्य धनुर्वेद उपवेद: सामवेदस्य गान्धर्ववेद उपवेदोऽथर्ववेदस्य स्थापत्यवेद उपवेद: इत्याह भगवान् कात्यायन: | (**चरणव्यूह-परिशिष्टे**)**

स्थापत्यवेद में नगरनिर्माण, जनभवन, राजभवन, देवभवन, शय्यासन-रचना, आभूषण, आयुध, नानावर्गीय प्रतिमा, अनेक जातिक चित्रनिर्माण, बहुबिध यन्त्ररचना आदि विविध स्थापत्य कौशलों का वर्णन किया गया है | ये सब विषय भारतीय वास्तुशास्त्र के उपजीव्य हैं | वास्तुशास्त्र ही स्थापत्यशास्त्र तथा शिल्पशास्त्र के नाम से जाना जाता है | शिल्प को ही कला कहा जाता है | कला के अन्तर्गत तीन विषय वर्णित हैं- वास्तुशास्त्र, शिल्पशास्त्र एवं चित्रशास्त्र जो स्थापत्य से सम्बन्धित हैं| वास्तुशास्त्र को 64 कला के अन्तर्गत गिना गया है | अत: यह एक वैज्ञानिक सिद्धान्त पर आधारित कलाविशेष है |

स्थापत्यवेद नामक उपवेद का षड्वेदाङ्गों में कल्पशास्त्रान्तर्गत शुल्बसूत्रों से साक्षात् सम्बन्ध है| चूँकि शुल्बसूत्रों में भूमिति विषयक सुक्ष्म विवेचन किया गया है | क्षेत्रविन्यास का अत्यन्त प्रामाणिक एवं आधारग्रन्थ शुल्बसूत्र ही है | यहाँ दिक्-साधन से आरम्भ कर क्षेत्रविन्यास

[4] पाणिनीय शिक्षा, १लोक- 41
[5] पा.धा.- 928

की विविध पद्धतियाँ दी गई हैं | भारतीय भूमितिशास्त्र में चकबन्दी आदि प्रमुख क्रियाओं का मूल आधार शुल्बसूत्र ही है | भारतीय ज्यामितिशास्त्र का उद्भव भी यहीं से हुआ है |

तदनुसार वास्तुशास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार गृह-भवन-प्रासाद-आलय आदि के निर्माण से पूर्व की क्रियाएँ शुल्बसूत्र में वर्णित हुए हैं | अत: यह कहना कोई अनुचित नहीं होगा कि वास्तुशास्त्र का आधार शुल्बसूत्र है | चूँकि शुल्बसूत्रों में जिन विधियों का वर्णन है उससे आगे का विवेचन वास्तुशास्त्र में उपलब्ध होता है | इस प्रकार पूर्वापर क्रिया सम्बन्ध के आधार पर यह सिद्ध होता है कि जिन सिद्धान्तों पर खड़ा है उससे पूर्व के सिद्धान्तों का प्रतिपादन शुल्बसूत्रों में किया गया है |

वस्तुतः अङ्गादि से युक्त पुरुष ही पुरुष तथा तदनुरूप अन्य पुरुष की कल्पना ही उपपुरुष होता है | इस लौकिक सिद्धान्त के आधार पर वेद अङ्गों सहित ही पूर्ण है | उस साङ्गवेद से ही उपवेदों की कल्पना सम्भव है | अत: यह कहना भी परम्परा से भिन्न नहीं होगा कि उपवेदों से पूर्व अङ्ग हुए| इस आधार पर शुल्बसूत्र जो वेद का हस्त-स्थानीय कल्पनामक वेदाङ्ग है, उससे स्थापत्यवेद का उद्भव या विकास माना जा सकता है | यद्यपि इतिहासकारों ने इस विषय में बहुत अधिक चिन्तन किया होगा | किन्तु समस्त चिन्तनों व सिद्धान्तों का आधार प्रमाण या तर्क ही होता है| इस सन्दर्भ में प्रमाण का सर्वथा अभाव है | अस्तु, तर्क के बलाबल के आधार पर इस तथ्य को स्वीकार करना ही श्रेयस्कर होगा | तदनुसार वेदाङ्गों में प्रतिपादित स्थापत्य सम्बन्धी विषयों का विस्तार ही उपवेद का स्वररूप माना जाना चाहिए | जैसा की श्रुति कहती है- **एवमिमे सर्वे वेदा निर्मिताः सकल्पा: सरहस्या: सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः सेतिहासाः सान्वाख्यानाः सपुराणाः सस्वराः ससंस्काराः सनिरुक्ताः सानुशासनाः सानुमार्जनाः सवाकोवाक्याः |**[6]

इस श्रौतवचन के अनुसार साङ्ग सकल्प सरहस्य सब्राह्मणादि वेद की उत्पत्ति प्रदर्शित है | इस साङ्गवेद से उपवेद कल्पित हुए यह तथ्य सामने आता है |

निष्कर्ष- उक्त विवेचनों से यह सिद्ध होता है कि वेदों के अन्तर्गत उपवेद की उपस्थिति होने के कारण वेदवत्पूज्य एवं आदरणीय हैं | वेद अङ्गों के साथ ही परिपूर्ण हैं, अत: अङ्गों से युक्त वेद से उपवेद की उत्पत्ति ही सर्वमान्य है | वेदाङ्गों में जिन तथ्यों का प्रकाशन हो चुका है उससे आगे के क्रम को कहे जाने से भी यह सपष्ट होता है | वेदाङ्ग कल्पशास्त्र के अन्तर्गत शुल्बसूत्र में मण्डलाकार भूमि को चतुरस्र बनाने की विधि, चतुरस्र को मण्डलाकार, आयताकार भूमि को चतुरस्रादि में परिवर्तित करने की विधि तथा त्रिकोणादि भूमियों की भी चतुरस्रादि में परिवर्तित करने की विधियाँ बताई गई हैं |

वास्तुशास्त्र में सर्वप्रथम भूमि परीक्षण का क्रम आरम्भ होता है | वासयोग्य भूमि कैसी हो ? इस पर चिन्तन किया गया है | भूमि चौकोर समतल हो इत्यादि निर्देश किया गया है | यदि भूमि

---

[6] गोपथब्राह्मणे- 1-2-10

तिरछी हो तो उसे चोकोर कैसे बनाएँ ? यह विधि वास्तुशास्त्र या स्थापत्यवेद में नहीं है, एतदर्थ शुल्बसूत्र की आवश्यकता पडेगी ही | इन समस्त तर्कों एवं प्रमाणों के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वास्तुशास्त्र का आधार शुल्बसूत्र है | इन दोनों में परस्पर आधाराधेय सम्बन्ध है |

शुल्बसुत्रों में वर्णित कतिपय भूमिति सम्बन्धी सिद्धान्त

चतुस्राकार भूमि को वृत्ताकार में परिवर्तित करने का नियम-

चतुस्रं मण्डलं चिकीर्षन् मध्यादंसे निपात्य पार्श्वत: परिलिख्य तत्र यदतिरिक्तं भवति तस्य तृतीयेन सह मण्डलं परिलिखेत्स समाधिः ||[7]

चतुस्राकार क्षेत्र को वृत्ताकार में बदलने हेतु चतुर्भुज के मध्य अर्थात् केन्द्रबिन्दु के ऊपर से कोणों को काटने वाली रेखा खीचें उस के बाद केन्द्र से भुजा की ओर एक सीधी रेखा खींचें | केन्द्र से भुजा तक खींची गई रेखा को कर्ण (अक्ष्णया) अर्थात् कोणों को काटने वाली रेखा पर रखें | भुजार्द्धमान की रेखा अक्ष्णया को जहाँ काटे वहाँ एक चिह्न दें | उस चिह्न से कोण की ओर जितने मान की रेखा बचे उसे तीन समान भागों में बाँट दें | उसमें से तृतीय अंश को भुजार्द्ध मान में मिला दें | उस के बाद जो रेखामान प्राप्त हो उसे व्यासार्द्ध मानकर वृत्त खींचें | इस वृत्त का क्षेत्रफल पूर्वोक्त चतुर्भुज के क्षेत्रफल के बराबर होगा | उदाहरण-

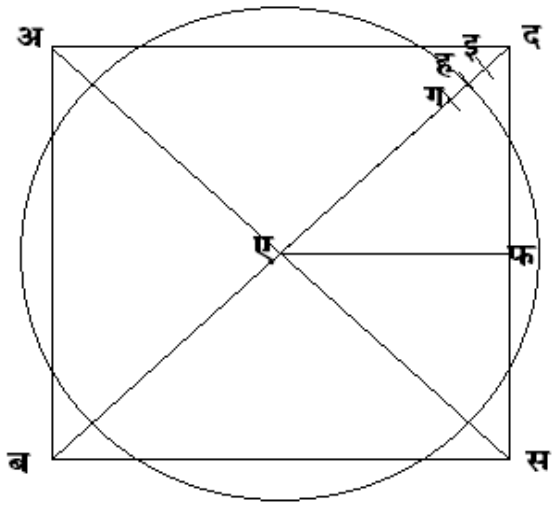

चित्र सं-१

प्रस्तुत चित्र सं-1 में **अ-ब-स-द** समचतुरस्र है, जिसके चारों भुजाओं का मान 13-13 है | समचतुरस्र को ही गणितीय भाषा में वर्ग कहते हैं| वर्ग का क्षेत्रफल= भुजा^{2} होता है| तदनुसार 13^2 =13X13=169 हुआ| सचतुरस्र के **अ-स** एवं **ब-द** दोनों कोणों वाली कर्ण (अक्ष्णया) रेखा चतुरस्र के मध्यभाग को जहाँ काटती है, वह बिन्दु चतुरस्र का केन्द्र **ए** द्वारा चिह्नित है|

ए-फ भुजार्द्धमान = 6.50 है| कर्ण^2 (अक्ष्णया रेखा) का मान= भुजा^{2} + भुजा^{2} होता है | तदनुसार $13^2 + 13^2$= 169+169= $\sqrt{338}$ = $13\sqrt{2}$ हुआ | 338 का वर्गमूल निकालने पर 18.384776310 मान प्राप्त हुआ | इस मान को दो भागों में विभाजित करने पर 18.384776310÷2= 9.192388155 यह **ए-द** कर्णरेखार्द्ध (अक्ष्णयार्द्ध) मान है | शुल्बसूत्रोक्त नियमानुसार कर्णरेखार्द्ध मान में भुजार्द्ध मान घटाने पर 9.192388155-6.50= 2.692388155

[7] कात्यायन शुल्बसूत्र- 3-13

भुजार्द्ध मान के अतिरिक्त मान प्राप्त हुआ, जो **ग** बिन्दु द्वारा द्योतित है | **ग** चिह्न से **द** चिह्न तक का यह शेष मान 2.692388155 है | उक्त मान को तीन भागों में विभाजित किया तो 2.692388155÷3= 0.8974627183 शेष का तृतीयांश प्राप्त हुआ, तीनों भागों को प्रदर्शित करने के लिये **ग** से **द** तक दो बिन्दु **ह** एवं **इ** डाला गया है| इस मान को भुजार्द्धमान में मिलाने पर 6.50+0.8974627183= 7.3974627183 प्राप्त हुआ, जो कर्णार्द्धरेखा पर **ए** एवं **ह** द्वारा प्रदर्शित है | उक्त मान के परकाल से खींचा गया वृत्त (मण्डल) का क्षेत्रफल समचतुरस्र के क्षेत्रफल के समान होगा | अब इस कथन को सिद्ध करने का प्रयत्न किया जा रहा है | यथा-

पैथागोरस ने वृत्त का क्षेत्रफल= πr^2 कहा है | π का मान उन्होंने $\frac{22}{7} = 3.14$ दिया है उससे शुल्बसूत्रोक्त गणितीय प्रक्रिया का हल नहीं हो पा रहा है |

जैसे- 3.14 X 7.3974627183 X 7.3974627183= 171.82850765 हुआ | ध्यातव्य हो कि वर्ग का क्षेत्रफल 169 है | इन दोनों में बहुत अधिक अन्तर आ रहा है | अतः यहाँ सबसे पहले पाइ का मान सिद्ध करना आवश्यक प्रतीत होता है, फलतः एतद्विषयक तर्क विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत करने का दुस्साहस मात्र कर रहा हूँ |

पाइ का मान

पाइ π एक संकेताक्षर है जिसका अर्थ विश्व के क्रमिक विकास से है | इसकी कल्पना भी एक अद्भुत एवं अप्रतिम बुद्धि का परिचायक है | वस्तुतः π का तात्पर्य मण्डल की परिधि ÷ व्यास है | रेखागणित के प्रख्यात विद्वान् पैथागोरस ने इसका मान $\frac{22}{7} = 3.14$ स्वीकार किया है | महान् गणितज्ञ पैथागोरस ने पाइ π का मान $\frac{22}{7} = 3.14$ ही क्यों स्वीकार किया ? इस संदर्भ में लगभग सभी गणितज्ञ मौन धारण किये हुए हैं | जब मैंने महर्षि कात्यायन कृत शुल्बसूत्र का अध्ययन किया तो ज्ञात हुआ कि वहाँ भी इस प्रकार की बात तो है किन्तु π के मान का स्पष्ट निर्देश नहीं हैं |

वस्तुतः पैथागोरस द्वारा प्रदत्त पाइ π का मान एक स्थूल मान है | सूक्ष्म चिन्तन करने पर यह बोध होता है कि यह मान $\frac{21.63}{7} = 3.09$ होना चाहिये, तथा गणितशास्त्र की मान्यता के अनुसार **अर्धाधिके पूर्णं ग्राह्यम्** आधे से अधिक मान को पूरा मान लेना चाहिये | इस वचन से 21.63 में दशमलव के बाद का अङ्क जो 50 से अधिक है, को पूर्ण मान लिया गया, फलतः वह $\frac{22}{7} = 3.14$ हुआ|

अब पुनः प्रश्न आता है कि पाइ का मान $\frac{21.63}{7} = 3.09$ कैसे? तो इस संदर्भ में शास्त्रसम्मत कुछ तर्क उपस्थापित कर रहा हूँ |

1. पृथ्वी से ऊपर तक सप्तलोक कहे गये हैं- भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः एवं सत्यम् , जिसे ऊर्ध्वलोक की संज्ञा दी गई है | इन सप्तलोकों के विषय में उपनिषद् श्रुति कहती है **त्रयो वा इमे लोकाः[8], इमे वै लोकास्त्रिवृतः[9]** तथा **त्रयो वा इमे त्रिवृतो लोकाः[10]** अर्थात् ये समस्त ऊर्ध्वलोक तीन हैं और त्रिवृत हैं | तात्पर्य यह है कि भूः भुवः स्वः ये तीन, त्रिगुणित हैं | तीन को तीन से गुणा करने पर 9 अङ्क प्राप्त होता है | पुनः सात कैसे? तो इसके लिये निम्न चक्र देखें-

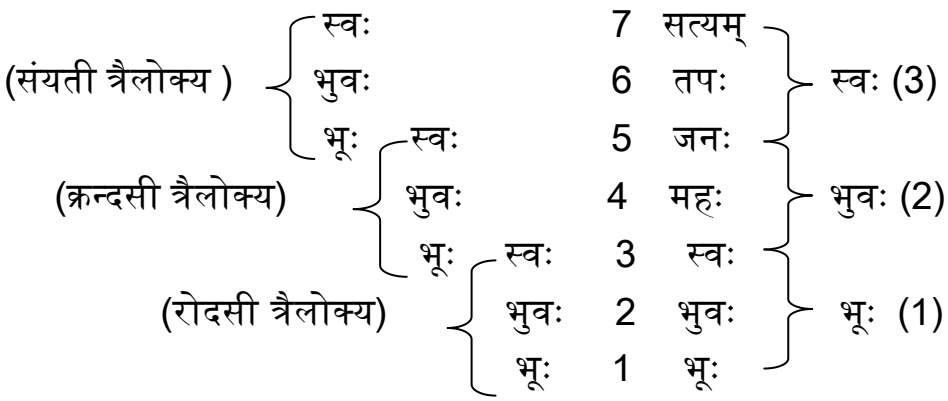

उक्त सारिणी के अनुसार यह स्पष्ट हो जाता है कि तीन त्रिलोकियों से नौ लोक बनते हैं | किन्तु रोदसी त्रैलोक्य के स्वःलोक में क्रन्दसी त्रैलोक्य का भूः समाविष्ट है, तथा क्रन्दसी त्रैलोक्य के स्वःलोक में संयती त्रैलोक्य का भूः समाविष्ट है | फलतः भूरादि सात लोकों की स्वतन्त्र सत्ता बन जाती है| इस प्रकार यह समस्त विश्वमण्डल जो 360 अंश का है, उसके अवान्तर सप्त मण्डल एवं नव मण्डल बनते हैं, उन सप्त एवं नव मण्डलों का पुनः तीन मण्डल में अध्याहार हो जाता है |

- सप्तलोकों को प्रधान तीन लोकों से गुणित करने पर 7 X 3 = 21 प्राप्त हुआ |
- ऊर्ध्वलोक के नव एवं सप्त अवान्तर मण्डलों को परस्पर गुणित करने पर 9 X 7 = 63 अंश प्राप्त हुआ|
- समस्त त्रिवृतत्रय (9) लोक सप्त मण्डलान्तर्गत हैं अतः 21.63 को 7 से विभाजित करने पर 3.09 मान प्राप्त होता है, जो जगत् की मूलावस्था को द्योतित करता है|

2. दूसरा तर्क यह है कि किसी भी बिन्दु के तीन भाग निश्चित होते हैं आदि मध्य एवं अन्त | इन तीनों भागों का भूत भविष्य वर्त्तमान से नित्य सम्बन्ध है | चूंकि प्रत्येक मण्डल का आदि मध्यावसान त्रिकाल सत्य पर आश्रित है | इस प्रकार त्रिकाल में

---

[8] श०प०ब्रा०- 1-2-4-20

[9] जैमिनीयब्राह्मण- 1-212, 230

[10] ऐ०ब्रा०- 4-2-3

त्रिविधत्व को समेटा हुआ यह जगत् 360 अंश का है, जिसमें 4 वेद, 3 काल तथा 3 बिन्दु नित्य अवस्थित हैं | इन अङ्कों को आपस में गुणित करने पर 4 X 3 X 3 = 36 अङ्क प्राप्त होता है | इस 36 को दश दिशाओं में व्यवस्थित करने पर 36 X 10 = 360 सिद्ध हो जाता है | यह मान विश्वमण्डल का है, जो समस्त मण्डल के लिये स्वीकार किया जाता है |

ज्योतिष शास्त्र **यत्पिण्डे तद्ब्रह्माण्डे** इस सिद्धान्त पर आधारित है | ज्योतिषशास्त्र में 9 ग्रहों की प्रधानता है | त्रिकाल को त्रिविधत्व (3 X 3) से गुणित करने पर 9 संख्या प्राप्त होती है, ये आपस में एक दूसरे से संयुक्त हैं, अर्थात् एक दूसरे को ग्रहण किये हुए हैं, अत एव ग्रह कहलाते हैं | तीनों लोक जो त्रिवृत हैं, वे भी (3 X 3)= 9 होते हैं | इस प्रकार त्रिकालाधीन एवं त्रिविधत्वाधीन यह समस्त जागतिक प्रपञ्च 9 ग्रह एवं त्रिवृत् त्रिलोकी गुणित होकर 9 X 9 = 81 होते हैं | 9 का वर्गमूल 3 होता है तथा 81 का वर्गमूल 09 होता है | इस आधार पर विश्वमण्डल के विकास क्रम को 3.09 से समझा जा सकता है |

3. तीसरा तर्क यह उपस्थापित कर रहा हूँ कि खगोल (आकाशमण्डल) को 9 वीथियों में विभाजित किया गया है | इसका उल्लेख वायुपुराण के उत्तरार्द्ध 5/48-52 में किया गया है| नागवीथी, गजवीथी एवं ऐरावतीवीथी उत्तर में, गोवीथी, जारङ्गवीवीथी तथा आर्षभीवीथी विषुवत् रेखा के समानान्तर मध्य स्थान में, और अजवीथी, वैश्वानरीवीथी तथा मृगवीथी दक्षिण में है | तीनों स्थानों में तीन-तीन वीथियाँ कही गई हैं | इस प्रकार 3 X 3=9 होता है, जिसका वर्गमूल 3 है |

शुक्लयजुर्वेद संहिता के 18 वें अध्याय में वसोर्धारा होम का विधान किया गया है | उस प्रसङ्ग में युग्मस्तोम एवं अयुग्मस्तोम द्वारा देवताओं ने स्वर्ग को प्राप्त किया यह कहा गया है | अयुग्मस्तोम 1 से लेकर 33 तक तथा युग्मस्तोम 4 से 48 तक कहा गया है |[11] इन दोनों अयुग्म एवं युग्म स्तोमों के चरमांश का योग 33+48=81 होता है, जिसका वर्गमूल 9 है | इससे समस्त ख-मण्डल वीथियों एवं स्तोमों द्वारा 3.09 परिक्षेत्र में व्याप्त परिलक्षित होता है | अर्थात् मण्डल के केन्द्र से परिधि तक का मान केवल दो व्यासार्द्धों के योग से पूर्ण नहीं हो सकता, अपितु दो व्यासार्द्धों के योग को केन्द्र के मान 3.09 से गुणित करने पर ही मण्डल का समुचित मान प्राप्त होगा| इन्हीं कारणों से केन्द्र को π इस संकेताक्षर द्वारा बताया गया है, और उसका मान 3.09 रखा गया है |

[11] एका च मे.....त्रयस्त्रिंशच्चमे यज्ञेन कल्पताम् | चतस्रश्चमे.....अष्टाचत्वारिंशच्चमे यज्ञेन कल्पताम् || (शु०य०सं०-18/24-25

उपर्युक्त तर्कों के आधार पर पाइ π का मान 3.09 पूर्ण रूप से सङ्गत प्रतीत होता है | इस मान को शुल्बसूत्रोक्त विधि में स्वीकार करने पर शुल्बसूत्रोक्त प्रक्रिया पूर्णरूपेण घटित होती है, जिसका प्रदर्शन चतुरस्र को मण्डल में बदलने की विधि एवं मण्डल को चतुरस्र में बदलने की विधि के वर्णन द्वारा किया गया है | आशा है विद्वद्गण मेरे तर्क एवं प्रयत्न से संतुष्ट होंगे |

उपर्युक्त विधि के अनुसार π का मान $\frac{21.63}{7}$ = 3.09 स्वीकार करने पर गणितीय प्रक्रिया इस प्रकार होगी |

वृत्त का व्यासार्द्ध (r) = 7.3974627183

वृत्त का क्षेत्रफल = πr^2

तदनुसार 3.09 X 7.3974627183 X 7.3974627183 =

169.09238492 मान प्राप्त हुआ जो वर्ग के क्षेत्रफल के समान है |

इसी तरह मण्डलाकार भूमि को चतुरस्राकार में बदलने के लिये महर्षि कात्यायन ने अधोलिखित नियम प्रतिपादित किया है | यथा-

मण्डलं चतुरस्रं चिकीर्षन् विष्कम्भं पञ्चदशभागान् कृत्वा द्वावुद्धरेच्छेषः करणी ||[12]

वृत्त के व्यास को पन्द्रह समान भागों में विभाजित करें | दो भागों को छोडकर शेष तेरह भाग के मान को करणी (भुजा) मानकर विन्यस्त समचतुरस्र का क्षेत्रफल वृत्त के क्षेत्रफल के समान होगा | उदाहरण-

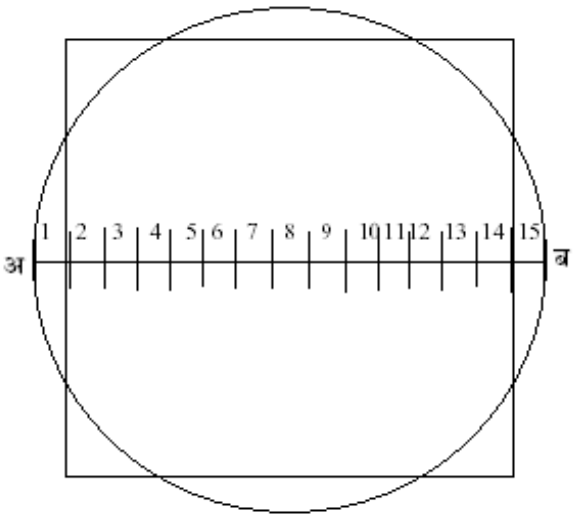

चित्र सं - २

चित्र सं-1 में समचतुरस्र के क्षेत्रफल के बराबर क्षेत्रफल के बने वृत्त का व्यासार्द्धमान= 7.3974627183 है | वृत्त का व्यास= व्यासार्द्ध X 2 अर्थात् 7.3974627183 X 2 = 14.794925436 हुआ | यहां भी दशमलव के बाद का अङ्क अर्धाधिक है अतः पूर्ण ग्रहण करने पर 15 अङ्क प्रात हुआ | चित्र सं- 2 में विन्यस्त वृत्त का व्यास 15 है | इसे पन्द्रह समान भागों में विभाजित कर दोनों ओर से एक-एक भाग छोडकर शेष 13 को ग्रहण किया |

[12] कात्यायन शुल्बसूत्र- 3-14

13 को करणी मानकर विन्यस्त समचतुरस्र (वर्ग) की प्रत्येक भजा का मान 13 है | इस प्रकार वर्ग का क्षेत्रफल= भजा^{2} अर्थात् (भुजा X भुजा) 13 X13 = 169 सिद्ध हुआ|

उक्त विवरणों के अनुसार यह स्पष्ट होता है कि शुल्बसूत्रों में ज्यामिति पर आधारित भूमिति शास्त्र का वैज्ञानिक विवेचन किया गया है | इस आधार पर भारतीय गणित शास्त्र को तैयार किया जाना चाहिये, जिससे भारतीय शास्त्रों की मर्यादा यथावत् सुरक्षित रह सके| उक्त ज्ञान के अभाव में वास्तुसम्बन्धी सूक्ष्मविचारों को समझना अत्यन्त दुष्कर कार्य होगा | वास्तु के तत्त्वों को सम्यक्तया समझने के लिये शुल्बसूत्रोक्त प्रक्रिया का ज्ञान परमावश्यक है | यह तो सर्वविदित ही है कि गृहनिर्माणादि विषय वास्तुशास्त्र में प्रतिपादित हैं | किन्तु गृह निर्माण से पूर्व वास्तुशास्त्रकारों ने भू-परीक्षण का विधान बतलाया है | भू-परीक्षण के अन्तर्गत शुल्बसूत्रोक्त दिशा साधन से लेकर भूमिविन्यास तक की समस्त विधियां आवश्यकतया विचारणीय होंगे | इन समस्त साक्ष्यों प्रमाणों तर्कों तथा विधियों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि वास्तुशास्त्र का आधार शुल्बसूत्र है तथा इन दोनों में आधाराधेय सम्बन्ध है |

जयतु संस्कृतम् | जयतु भारतम् | जयन्तु वेदाः |